**International Research Journal of Human Resource and Social Sciences**
**ISSN(O): (2349-4085) ISSN(P): (2394-4218)**
**Impact Factor 6.924 Volume 8, Issue 09, September 2021**
**Website**- www.aarf.asia, **Email** : editoraarf@gmail.com

# भक्ति काल के साहित्य में निर्गुण उपासना का अध्ययन

**डॉ पंकज कुमार, सहायक आचार्य हिंदी**

**हाडारानी राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय सलूंबर, उदयपुर ;राजस्थान, 313027**

## सार

*हिन्दी साहित्य के इतिहास में भक्ति काल महत्वपूर्ण स्थान रखता है। आदिकाल के बाद आये इस युग को 'पूर्व मध्यकाल' भी कहा जाता है। इसकी समयावधि 1375वि.स.से 1700वि.स.तक की मानी जाती है। यह हिंदी साहित्य का श्रेष्ठ युग है जिसको जॉर्ज ग्रियर्सन ने स्वर्णकाल, श्यामसुन्दर दास ने स्वर्णयुग, आचार्य राम चंद्र शुक्ल ने भक्ति काल एवं हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लोक जागरण कहा। सम्पूर्ण साहित्य के श्रेष्ठ कवि और उत्तम रचनाएं इसी में प्राप्त होती हैं। दक्षिण में आलवार बंधु नाम से कई प्रख्यात भक्त हुए हैं। इनमें से कई तथाकथित नीची जातियों के भी थे। वे बहुत पढे-लिखे नहीं थे, परंतु अनुभवी थे। आलवारों के पश्चात दक्षिण में आचार्यों की एक परंपरा चली जिसमें रामानुजाचार्य प्रमुख थे। रामानुजाचार्य की परंपरा में रामानंद हुए। उनका व्यक्तित्व असाधारण था। वे उस समय के सबसे बड़े आचार्य थे। उन्होंने भक्ति के क्षेत्र में ऊंच-नीच का भेद तोड़ दिया। सभी जातियों के अधिकारी व्यक्तियों को आपने शिष्य बनाया।*

***मुख्य शब्द*** *: हिन्दी साहित्य भक्ति काल*

**© Association of Academic Researchers and Faculties (AARF)**
A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International e-Journal - Included in the International Serial Directories.

**प्रस्तावना**

13वीं सदी तक धर्म के क्षेत्र में बड़ी अस्तव्यस्तता आ गई। जनता में सिद्धों और योगियों आदि द्वारा प्रचलित अंधविश्वास फैल रहे थे, संपन्न वर्ग में भी रूढ़ियों और आडंबर की प्रधानता हो चली थी। मायावाद के प्रभाव से लोकविमुखता और निष्क्रियता के भाव समाज में पनपने लगे थे। ऐसे समय में भक्ति आंदोलन के रूप में ऐसा भारतव्यापी विशाल सांस्कृतिक आंदोलन उठा जिसने समाज में उत्कर्षविधायक सामाजिक और वैयक्तिक मूल्यों की प्रतिष्ठा की।

भक्ति आंदोलन का आरंभ दक्षिण के आलवार संतों द्वारा 10वीं सदी के लगभग हुआ। वहाँ शंकराचार्य के अद्वैतमत और मायावाद के विरोध में चार वैष्णव संप्रदाय खड़े हुए। इन चारों संप्रदायों ने उत्तर भारत में विष्णु के अवतारों का प्रचार-प्रसार किया। इनमें से एक के प्रवर्तक रामानुजाचार्य थे, जिनकी शिष्यपरंपरा में आनेवाले रामानंद ने (पंद्रहवीं सदी) उत्तर भारत में रामभक्ति का प्रचार किया। रामानंद के राम ब्रह्म के स्थानापन्न थे जो राक्षसों का विनाश और अपनी लीला का विस्तार करने के लिए संसार में अवतीर्ण होते हैं। भक्ति के क्षेत्र में रामानंद ने ऊँचनीच का भेदभाव मिटाने पर विशेष बल दिया। राम के सगुण और निर्गुण दो रूपों को माननेवाले दो भक्तों - कबीर और तुलसी को इन्होंने प्रभावित किया। विष्णुस्वामी के शुद्धाद्वैत मत का आधार लेकर इसी समय बल्लभाचार्य ने अपना पुष्टिमार्ग चलाया। बारहवीं से सोलहवीं सदी तक पूरे देश में पुराणसम्मत कृष्णचरित् के आधार पर कई संप्रदाय प्रतिष्ठित हुए, जिनमें सबसे ज्यादा प्रभावशाली वल्लभ का पुष्टिमार्ग था। उन्होंने शांकर मत के विरुद्ध ब्रह्म के सगुण रूप को ही वास्तविक कहा। उनके मत से यह संसार मिथ्या या माया का प्रसार नहीं है बल्कि ब्रह्म का ही प्रसार है, अत: सत्य है। उन्होंने कृष्ण को ब्रह्म का अवतार माना और उसकी प्राप्ति के लिए भक्त का पूर्ण आत्मसमर्पण आवश्यक बतलाया। भगवान् के अनुग्रह या पुष्टि के द्वारा ही भक्ति सुलभ हो सकती है। इस संप्रदाय में उपासना के लिए गोपीजनवल्लभ, लीलापुरुषोत्तम कृष्ण का मधुर रूप स्वीकृत हुआ। इस प्रकार उत्तर भारत में विष्णु के राम और कृष्ण अवतारों की प्रतिष्ठा हुई।

यद्यपि भक्ति का स्रोत दक्षिण से आया तथापि उत्तर भारत की नई परिस्थितियों में उसने एक नया रूप भी ग्रहण किया। मुसलमानों के इस देश में बस जाने पर एक ऐसे भक्तिमार्ग की आवश्यकता थी जो हिंदू और मुसलमान दोनों को ग्राह्य हो। इसके अतिरिक्त निम्न वर्ग के लिए भी अधिक मान्य मत वही हो सकता था जो उन्हीं के वर्ग के पुरुष द्वारा प्रवर्तित हो। महाराष्ट्र के संत नामदेव ने १४वीं शताब्दी में इसी प्रकार के भक्तिमत का सामान्य जनता में प्रचार किया जिसमें भगवान् के सगुण और निर्गुण दोनों रूप गृहीत थे। कबीर के संतमत के ये पूर्वपुरुष हैं। दूसरी ओर सूफी कवियों ने हिंदुओं की लोककथाओं का आधार लेकर ईश्वर के प्रेममय रूप का प्रचार किया।

इस प्रकार इन विभिन्न मतों का आधार लेकर हिंदी में निर्गुण और सगुण के नाम से भक्तिकाव्य की दो शाखाएँ साथ साथ चलीं। निर्गुणमत के दो उपविभाग हुए - ज्ञानाश्रयी और प्रेमाश्रयी। पहले के प्रतिनिधि कबीर और दूसरे के जायसी हैं। सगुणमत भी दो उपधाराओं में प्रवाहित हुआ - रामभक्ति और कृष्णभक्ति। पहले के प्रतिनिधि तुलसी हैं और दूसरे के सूरदास।

भक्तिकाव्य की इन विभिन्न प्रणलियों की अपनी अलग अलग विशेषताएँ हैं पर कुछ आधारभूत बातों का सन्निवेश सब में है। प्रेम की सामान्य भूमिका सभी ने स्वीकार की। भक्तिभाव के स्तर पर मनुष्यमात्र की समानता सबको मान्य है। प्रेम और करुणा से युक्त अवतार की कल्पना तो सगुण भक्तों का आधार ही है पर निर्गुणोपासक कबीर भी अने राम को प्रिय, पिता और स्वामी आदि के रूप में स्मरण करते हैं। ज्ञान की तुलना में सभी भक्तों ने भक्तिभाव को गौरव दिया है। सभी भक्त कवियों ने लोकभाषा का माध्यम स्वीकार किया है।

ज्ञानश्रयी शाखा के प्रमुख कवि कबीर पर तात्कालिक विभिन्न धार्मिक प्रवृत्तियों और दार्शनिक मतों का सम्मिलित प्रभाव है। उनकी रचनाओं में धर्मसुधारक और समाजसुधारक का रूप विशेष प्रखर है। उन्होंने आचरण की शुद्धता पर बल दिया। बाह्याडंबर, रूढ़ियों और अंधविश्वासों पर उन्होंने तीव्र कशाघात किया। मनुष्य की क्षमता का उद्घोष कर उन्होंने निम्नश्रेणी की जनता में आत्मगौरव का भाव जगाया। इस शाखा के अन्य कवि रैदास, दादू हैं।

अपनी व्यक्तिगत धार्मिक अनुभूति और सामाजिक आलोचना द्वारा कबीर आदि संतों ने जनता को विचार के स्तर पर प्रभावित किया था। सूफी संतों ने अपने प्रेमाख्यानों द्वारा लोकमानस को भावना के स्तर पर प्रभावित करने का प्रयत्न किया। ज्ञानमार्गी संत कवियों की वाणी मुक्तकबद्ध है, प्रेममार्गी कवियों की प्रेमभावना लोकप्रचलित आख्यानों का आधार लेकर प्रबंधकाव्य के रूप में ख्यायित हुई है। सूफी ईश्वर को अनंत प्रेम और सौंदर्य का भंडार मानते हैं। उनके अनुसार ईश्वर को जीव प्रेम के मार्ग से ही उपलब्ध कर सकता है। साधाना के मार्ग में आनेवाली बाधाओं को वह गुरु या पीर की सहायता से साहसपूर्वक पार करके अपने परमप्रिय का साक्षात्कार करता है। सूफियों ने चाहे अपने मत के प्रचार के लिए अपने कथाकाव्य की रचना की हो पर साहित्यिक दृष्टि से उनका मूल्य इसलिए है कि उसमें प्रेम और उससे प्रेरित अन्य संवेगों की व्यंजना सहजबोध्य लौकिक भूमि पर हुई है। उनके द्वारा व्यंजित प्रेम ईश्वरोन्मुख है पर सामान्यत: यह प्रेम लौकिक भूमि पर ही संक्रमण करता है। परमप्रिय के सौंदर्य, प्रेमक्रीड़ा और प्रेमी के विरहोद्वेग आदि का वर्णन उन्होंने इतनी तन्मयता से किया है और उनके काव्य का मानवीय आधार इतना पुष्ट है कि आध्यात्मिक प्रतीकों और रूपकों के बावजूद उनकी रचनाएँ प्रेमसमर्पित कथाकाव्य की श्रेष्ठ कृतियाँ बन गई हैं। उनके काव्य का पूरा वातावरण लोकजीवन का और गार्हस्थिक है। प्रेमाख्यानकों की शैली फारसी के मसनवी काव्य जैसी है।

इस धारा के सर्वप्रमुख कवि जायसी हैं जिनका "पदमावत' अपनी मार्मिक प्रेमव्यंजना, कथारस और सहज कलाविन्यास के कारण विशेष प्रशंसित हुआ है। इनकी अन्य रचनाओं में "अखरावट' और "आखिरी कलाम' आदि हैं, जिनमें सूफी संप्रदायसंगत बातें हैं१ इस धारा के अन्य कवि हैं कुतबन, मंझन, उसमान, शेख, नबी और नूरमुहम्मद आदि।

ज्ञानमार्गी शाखा के कवियों में विचार की प्रधानता है तो सूफियों की रचनाओं में प्रेम का एकांतिक रूप व्यक्त हुआ है। सगुण धारा के कवियों ने विचारात्मक शुष्कता और प्रेम की एकांगिता दूरकर जीवन के सहज उल्लासमय और व्यापक रूप की प्रतिष्ठा की। कृष्णभक्तिशाखा के कवियों ने आनंदस्वरूप लीलापुरुषोत्तम कृष्ण के मधुर रूप की प्रतिष्ठा कर जीवन के प्रति गहन राग को स्फूर्त किया। इन कवियों में सूरसागर के रचयिता महाकवि सूरदास श्रेष्ठतम हैं जिन्होंने कृष्ण के मधुर व्यक्तित्व का अनेक मार्मिक रूपों में साक्षात्कार किया। ये प्रेम और सौंदर्य के निसर्गसिद्ध गायक हैं। कृष्ण के बालरूप की जैसी विमोहक, सजीव और

बहुविध कल्पना इन्होंने की है वह अपना सानी नहीं रखती। कृष्ण और गोपियों के स्वच्छंद प्रेमप्रसंगों द्वारा सूर ने मानवीय राग का बड़ा ही निश्छल और सहज रूप उद्घाटित किया है। यह प्रेम अपने सहज परिवेश में सहयोगी भाववृत्तियों से संपृक्त होकर विशेष अर्थवान् हो गया है। कृष्ण के प्रति उनका संबंध मुख्यत: सख्यभाव का है। आराध्य के प्रति उनका सहज समर्पण भावना की गहरी से गहरी भूमिकाओं को स्पर्श करनेवाला है। सूरदास वल्लभाचार्य के शिष्य थे। वल्लभ के पुत्र बिट्ठलनाथ ने कृष्णलीलागान के लिए अष्टछाप के नाम से आठ कवियों का निर्वाचन किया था। सूरदास इस मंडल के सर्वोत्कृष्ट कवि हैं। अन्य विशिष्ट कवि नंददास और परमानंददास हैं। नंददास की कलाचेतना अपेक्षाकृत विशेष मुखर है।

## उद्देश्य

1. निर्गुण भक्ति का अध्ययन
2. निर्गुण भक्ति-धारा के अध्ययन को अन्य भक्ति-धाराओं से विशेष रूप से पहचानना

## निर्गुण भक्ति-धारा में प्रतिरोध का स्वर

निर्गुण भक्ति-धारा को अन्य भक्ति-धाराओं से खास पहचान दिलाने वाली विशेषता उसकी प्रतिरोधी चेतना है। निर्गुण साहित्य में मौजूद प्रतिरोध के स्वर ने रामचन्द्र शुक्ल को भी अपनी पहचान करा दी थी। निर्गुण धारा के प्रति नकारात्मक दृष्टि रखने के बावजूद उन्होंने हिन्दी साहित्य में इस स्वर को रेखांकित करते हुए लिखा कि, "बहुदेवोपासना, अवतार और मूर्तिपूजा का खण्डन ये मुसलमानी जोश के साथ करते थे और मुसलमानों की कुरबानी (हिंसा), नमाज, रोजा आदि की असारता दिखाते हुए ब्रह्म, माया, जीव, अनहद नाद, सृष्टि, प्रलय आदि की चर्चा पूरे हिन्दू ब्रह्मज्ञानी बनकर करते थे।" (*हिन्दी साहित्य का इतिहास,* पृ. 45, लोक भारती प्रकाशन, इलाहबाद) मध्यकाल में जाति-व्यवस्था, धर्म की तरह ही बहुत ताकतवर थी। कुछ विचारक यह आरोप लगाते हैं कि कबीर, दादू आदि निर्गुण सन्तों ने कहीं भी राजा या सम्राट का विरोध नहीं किया। इनका प्रतिरोध सिर्फ जाति और धर्म को लेकर था। जब वे इतने उग्र थे तो तत्कालीन मुस्लिम शासकों के प्रति उदार क्यों थे? हालांकि इन कवियों ने कभी किसी राजा का आश्रय ग्रहण नहीं किया। डॉ. रामबक्ष का मत है कि निर्गुण सन्त सूफी कवियों की भाँति तत्कालीन मुस्लिम शासकों के समर्थक नहीं थे।

"यदि ऐसा होता तो वे भी सूफ़ी कवियों कि भाँति अपने ग्रन्थ के आरम्भ में तत्कालीन सम्राट की प्रशंसा करते। ऐसा उन्होंने किसी स्थान पर नहीं किया है। उनकी रचनाओं में राज कर्मचारियों की प्रशंसा में एक साखी भी नहीं मिलती है, हालांकि उनका विरोध उग्र या मुखर भी नहीं है। यह विरोध बड़े आए-गए ढंग से प्रच्छन्न रूप से किया हुआ है।"

हालांकि जातीय दमन का अत्यन्त मुखर प्रतिरोध इन कवियों ने किया है। दादू दयाल ने एकाध स्थान पर 'छत्रपति सिरिमौर' धारण करने वाले बादशाह को 'कागद का माणस' कहा है और समाज को निर्भय रहने का उपदेश दिया है। निर्भयता यदि जीवन मूल्य है तो यह निर्भयता राजसत्ता के आतंक के खिलाफ है। सूफियों ने भी तत्कालीन शासकों के सामने प्रेम का आदर्श रखा था। प्रेम का यह सूफी आदर्श भी दमनकारी सम्राटों को मानवीय बनाने का प्रयास ही है। इस रूप में सूफी काव्य भी सत्ता का उतना समर्थक प्रतीत नहीं होता।

निर्गुण कवि कहते है कि ईश्वर का न कोई रूप है, न रंग। न उसकी वेशभूषा है और न उसका कोई स्थान। वह तो सब प्रकार के गुणों और पहचान के चिन्हों से परे है। यदि ईश्वर ऐसा है तो उसकी न तो कोई मस्जिद हो सकती है न कोई मन्दिर। जब आप मन्दिर-मस्जिद की अवधारणा से असहमत हैं तो आपका प्रतिरोध उस संगठित कर्म से हो जाता है, जो ईश्वर का एक स्थान तय करता है। फिर उस स्थान की पूजा-आराधना होती है। आराधना की पद्धतियाँ निश्चित की जाती है। फिर उसका एक पुजारी होता है। प्रत्येक व्यक्ति स्वयं तो पूजा नहीं कर सकता। एक मन्दिर में एक पुजारी होगा या अनेक होंगे। उन पुजारियों की व्यवस्था होगी। भगवान को भेंट दी जाएगी। प्रसाद वितरित किया जाएगा। यह सब काम पुजारी के माध्यम से सम्पन्न होगा। इसके लिए व्रत होगा। उपवास होगा। रोजा रखा जाएगा। भगवान को प्रसन्न करने के लिए अनेक क्रिया-कलाप निश्चित किए जाएँगे। फिर एक पुस्तक होगी या अनेक पुस्तकें होगी। उसमें ईश्वर सम्बन्धी विवेचन होगा। कुरान में सब लिखा हुआ रहेगा। वेद अन्यों को प्रमाण के रूप में प्रस्तुत किया जाएगा।

धर्म और समाज का यह सारा तन्त्र इस एक अवधारणा से निरस्त हो जाता है कि ईश्वर तो निर्गुण है और वह सर्वव्यापी है। सिर्फ मन्दिर में नहीं रहता। वह तो घट-घट व्यापी है। सभी मनुष्यों में रहता है। तो सभी मनुष्य समान है। इस ईश्वर को भक्ति द्वारा, प्रेम द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।

**जाति और वर्ण भेद का विरोध**

इसी दर्शन के आधार पर निर्गुण भक्ति-साहित्य में जाति के आधार पर मनुष्य को ऊँचा-नीचा मानने का प्रतिरोध किया गया है। सन्त कवि ब्राह्मण वर्ग के ब्रह्मा के मुख से पैदा होने वाले सिद्धान्त को चुनौती देते हुए पूछते हैं कि –

***जे तू बाँभन बभनी जाया, तो आँन बाँट ह्वै काहे न आया।।***

सन्तों ने बताया कि सब एक ही तरह के अवयवों से युक्त शरीर वाले हैं। सब एक ही ज्योति से पैदा हुए हैं। फिर कौन ब्राह्मण और कौन शूद्र?

***एक बूँद एके मल मूतर, एक चाँम एक गूदा।***

***एक जोति थैं सब उतपनों कौन बरुन कौन सूदा।।(पद-156)***

एक ईश्वर की सन्तानों में कोई ऊँचा, कोई नीचा नहीं हो सकता है। इसलिए छुआछूत बरतना गलत है। वे ब्राह्मणों के छुआछूत व्यवहार की आलोचना करते हैं –

***काहे को कीजै पाण्डे छूत विचार।***

***छूतही ते उपजा सब संसार।।***

कबीर के अलावा अन्य निर्गुण सन्तों के यहाँ जातिवादी निम्नता का प्रतिरोध अपराजेय आत्मविश्वास के रूप में सामने आया। सन्तों ने अपनी जाति और उसके कारण नीच समझे जाने को अपने दोष की तरह छुपाया नहीं। उसके विपरीत उन्होंने अपनी जाति का स्पष्ट उल्लेख कर मानो स्वयं को जाति और वर्ण के कारण ऊँचा मानने वालों को बेहतर भक्त होने की चुनौती दे डाली। रैदास ने अपनी जाति और परिजन का उल्लेख करते हुए लिखा कि –

***ऐसी मेरी जाति विख्यात चमार***

निर्गुण सन्तों के रूप में जाति और वर्ण भेद सम्बन्धी प्रतिरोध के स्वर के नए आधार बौद्धों, सिद्धों के यहाँ मिल गए। इस प्रतिरोध का प्रसार और प्रभाव दूर और देर तक हुआ।

**धार्मिक भेदभाव का खण्डन**

भेदभाव से मुक्ति की आकांक्षा में जाति और वर्ण-भेद के साथ ही निर्गुण भक्ति-धारा ने धर्म आधारित भेदभाव के खिलाफ भी अपनी आवाज बुलन्द की। धार्मिक असमानता के प्रतिरोध का इनका स्वर अत्यन्त पैना और तीखा है। यह अकारण नहीं है कि जनश्रुतियाँ, मुल्लाओं और पण्डितों को कबीर के खिलाफ खड़ा दिखाती हैं। कबीर का धार्मिक भेदभाव, अन्धविश्वास और रूढ़ियों के खिलाफ स्वर कट्टरपन्थी हिन्दू और मुसलमानों को तिलमिला देने वाला है। इन आलोचनात्मक पदों की खासियत यह है कि एक ही पद में दोनों धर्मों की समभाव से आलोचना मिलती है। इन्हें हिन्दू और इस्लाम दोनों एक समान प्रिय या अप्रिय हैं। प्रेम क्या निन्दा में भी निर्गुण भक्ति हिन्दू-मुसलमान में भेद नहीं करती है। कबीर का एक पद है –

*अरे इन दोउन राह न पाइ।*

*हिन्दू अपनी करै बड़ाई, गागर छुवन न देई।*

*वेश्या के पायन तर सोवैं, यह देखी हिन्दुवाई।*

*मुसलमान के पीर औलिया, मुरगा-मुरगी खाई।*

*खाला केरी बेटी ब्याहैं घरहि में करैं सगाई।*

*हिन्दुन की हिन्दुवाई देखी तुरकन की तुरकाई।*

*कहै कबीर सुनौ भाई साधौ, कौन राह है जाई।*

हिन्दू छूत मानते हैं, मगर वेश्यागामी भी हैं। मुसलमानों के धर्मगुरु ही जीव हिंसा करने वाले होते हैं और निकट-सम्बन्धियों से शादी करने वाले होते हैं। निर्गुण सन्त आडम्बर, अन्धविश्वास , कर्मकाण्ड ही नहीं, कुरीति और अनाचार के लिए भी दोनों धर्म के अनुयायियों को एक ही भाव से धिक्कारते हैं। दोनों धर्मों के अनुयायियों की बुराइयाँ दिखाकर सन्तों ने उन्हें सही राह पर चलने को कहा। हिन्दुओं की मूर्तिपूजा का विरोध करते हुए कबीर लिखते हैं –

***पाहन पूजे हरी मिले, तो मैं पूजू पहाड़!***

***घर की चक्की कोई न पूजे, जाको पीस खाए संसार।।***

पत्थर पूजने से यदि ईश्वर मिल सकता है तो पहाड़ को ही पूज लिया जाना चाहिए। यदि ऐसा न कर सकें तो पत्थर की बनी घर की चक्की है, उसे क्यों भुलाया जाए, जिसका पीसा हुआ अन्न हम रोज खाते हैं। मूर्तिपूजा पर किए गए ऐसे कटाक्षों में भी एक तर्क है। इसी तर्क आधारित व्यंग्य शैली में कबीर ने मुसलमानों द्वारा अल्लाह को प्रसन्न करने के लिए नमाज अदा करने, फिर जीव हिंसा करने पर कटाक्ष किया है। कबीर ने लिखा कि कंकड़ पत्थर जोड़ कर मस्जिद बनाते हो। उस पर चढ़कर मुर्गे की तरह नियत समय पर बांग देकर अल्लाह को की तरह चिल्लाकर बुलाते हो। क्या खुदा बहरा हो गया है?

***कांकर पाथर जोरिके, मस्जिद लई चुनाय।***

*ता उपर मुल्ला बांग दे, क्या बहरा हुआ खुदाय।।*

## निष्कर्ष

निर्गुण भक्ति-धारा मध्यकालीन भक्ति आन्दोलन का सबसे प्रगतिशील स्वर है। इसमें मौजूद प्रतिरोध का स्वर आधुनिक चेतना के बहुत निकट है। सामाजिक-सांस्कृतिक असमानता और रूढ़ियों की कड़ी आलोचना इसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बना देती है। परन्तु यह स्वर समय के साथ बदलने लगा। इसके सामाजिक रूपान्तरण का प्रभाव इसकी सामाजिक स्वीकृति पर भी पड़ा, और प्रतिरोध के स्वर पर भी। ऐसे में निर्गुण भक्ति-धारा में मौजूद प्रतिरोध का स्वरूप जानना जरूरी है। इस प्रतिरोधी स्वर की प्रासंगिकता, इसके सामाजिक सरोकार, निर्गुण भक्ति-धारा के सामाजिक रूपान्तरण के कारक, और सामाजिक रूपान्तरण का निर्गुण-धारा की प्रतिरोधी चेतना पर प्रभाव जानना बहुत जरूरी है।

## संदर्भ


1. *हिन्दी साहित्य कोश भाग-1*,धीरेन्द्र वर्मा, ज्ञानमण्डल,वाराणसी
2. *हिन्दी साहित्य कोश भाग-2*,धीरेन्द्र वर्मा, ज्ञानमण्डल,वाराणसी
3. मुक्तिबोध ग्रन्थावली, नेमिचन्द्र जैन (सं.), खण्ड-5, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
4. *हिन्दी साहित्य का इतिहास*,आचार्य रामचन्द्र शुक्ल,नागरी प्रचारणी सभा,वाराणसी
5. *हिन्दी साहित्य का उदभव और विकास,*हजारी प्रसाद द्विवेदी,राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
6. *हिन्दी साहित्य की भूमिका,* हजारी प्रसाद द्विवेदी,राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
7. *दादू दयाल* , रामबक्ष, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली
8. *कबीर ग्रन्थावली,* सम्पादक – डॉ. श्यामसुन्दर दास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी,

9. *हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय,* पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल, अवध पब्लिशिंग हाउस, लखनऊ, *कबीर,* हजारीप्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

10. लांस नेल्सन (2007), धर्मशास्त्र और धार्मिक अध्ययन का एक परिचयात्मक शब्दकोश (संपादक: ऑरलैंडो ओ. एस्पिन, जेम्स बी. निकोलॉफ), लिटर्जिकल प्रेस, आईएसबीएन 978-0814658567, पृष्ठ 562-563

11. एसएस कुमार (2010), भक्ति - प्रेम का योग, एलआईटी वेरलाग मुंस्टर, आईएसबीएन 978-3643501301, पृष्ठ 35-36

12. वेंडी डोनिगर (2009), "भक्ति", एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका जौहर, सुरिंदर (1999)। गुरु गोबिंद सिंह: एक बहुआयामी व्यक्तित्व। एमडी प्रकाशन। पी। 89. आईएसबीएन 978-8-175-33093-1.

13. शोमर और मैकलियोड (1987), पृ. 2.

14. क्रिश्चियन नोवेट्ज़के (2007)। "भक्ति और उसकी जनता"। हिंदू अध्ययन के अंतर्राष्ट्रीय जर्नल. 11 (3): 255-272. doi :10.1007/s11407-008-9049-9। जेएसटीओआर 25691067. एस2सीआईडी 144065168।

15. पेचिलिस प्रेंटिस (2014), पीपी 10-16।